International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(3): 30-31

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(3): 30-31
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 10-01-2015
Accepted: 26-02-2015

डा0 तृप्ति शर्मा
दिल्ली विश्वविद्यालय

Correspondence
डा0 तृप्ति शर्मा
दिल्ली विश्वविद्यालय

ऋग्वेद में 'दान' की महत्ता

डा0 तृप्ति शर्मा

वेद मनुष्य मात्र के लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है। मनुष्य के लिए जिन धार्मिक क्रियाओं का उपदेश ऋषियों ने दिया है उन में 'दान' भी विशेष रूप से उल्लेखित है। दान की दृष्टि से जब प्रकृति का विश्लेषण किया जाता है तो ज्ञात है कि दान और प्रतिपादन द्वारा ही समस्त प्राकृतिक और सामाजिक जीवन संचालित है यज्ञ, दान, तप और स्वाध्याय वैदिक जीवन के चार मुख्य स्तम्भ है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस नाशवान् जगत् में मनुष्य प्रत्येक वस्तु को स्वामित्व की भावना से संग्रहपूर्वक अधिकार में करता है। यह उस की प्रकृति का सहज रूप है। किन्तु इससे जहाँ एक ओर अहंकार की भावना और आसुरी भावों का उदय होता है वही दूसरी ओर समाज में अभाव और दरिद्रता की भी जन्म होता है। इसलिए वैदिक जीवन में हर दृष्टि से दान को एक अनुष्ठान के रूप में प्रतिष्ठित किया गया।

दान कर्म में मुख्य रूप से चार तत्त्व प्रधान होते है – दाता, प्रतिग्रहीता, प्रदेय वस्तु एंव फल। इनके विषय में बाद में स्मृतियों में विस्तृत उल्लेख मिलता है। मनु ने कहा है कि कृत (सतयुग), त्रेता, द्वापर तथा कलियुग में धार्मिक जीवन के प्रमुख रूप क्रम से तप, ज्ञान, एंव दान है। [1] दान का अर्थ है कि जब दूसरे व्यक्ति को दी जाने वाली वस्तु से अपना स्वामित्व समाप्त होकर उसका स्वामित्व हो जाता है अर्थात् दूसरे को अपनी वस्तु का स्वामी बना दिया जाता है, वह दान है। देवता की परिभाषा करते हुए यास्क ने दानाद्वा के रूप में निर्वचन दिया है। [2] ऋग्वेद से लेकर उपनिषदों तक दान की प्रशंसा में अनेक मन्त्र उपलब्ध होते हैं।

ऋग्वेद में विविध प्रकार के दानों का उल्लेख है तथा दाताओं की भी प्रशंसा की गई है। दान मे स्वर्ण मुद्राएँ, अश्व, बैल, गाय आदि दिए जाने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में भावयव्य के पुत्र स्वनय के द्वारा कक्षीवान् को सौ स्वर्ण मुद्राएँ, सौ अश्व, सौ बैल दिए जाने का वर्णन मिलता है। [3] इस दान से ही राजा ने स्वर्ग लोक में स्थायी यश प्राप्त किया। [4] पाँचवे मण्डल के 61वें सूक्त में रानी शशीयसी की अति प्रशंसा की गई है जिसने कि श्यावाश्व को घोड़े, गाय एवं मेष के रूप में सैकड़ो प्रकार का पशु–धन दिया था। [5] इसी सूक्त में विददश्व के पुत्र पुरूमीढ के द्वारा श्यावाश्व को गाएँ एवं अन्य सम्पत्तियाँ दान दिये जाने का उल्लेख है। [6] छठे मण्डल में भी प्रस्तोक [7] के द्वारा स्तोताओं को दस घोड़े और सुवर्ण से भरे दस कोष तथा अश्वत्थ[8] के द्वारा अथर्व गोत्र वाले ऋषियों को सौ गाएँ दिए जाने का उल्लेख हैं। आठवें मण्डल में चेदिवंशीय राजा कृशु के दान की चर्चा करते हुए ऋषि ने कहा है कि उसने भी ऊंट एवं हजार गायें दी [9] तथा उसकी प्रशंसा में यह कहा है कि कृश से बढ़कर अधिक दान देने वाला एंव विद्वान् व्यक्ति अन्य नही है।[10] इसी मण्डल में राजाओं के द्वारा अनेक प्रकार के दान दिए जाने की बात ऋषि ने कही है। [11] दान देने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इसका स्पष्ट उल्लेख ऋषियों ने ऋग्वेद में किया है। [12] ऋग्वेद का सम्पूर्ण सूक्त 'दक्षिणा–सूक्त' है जिसमें कि दक्षिणा एंव दक्षिणा देने वाले व्यक्ति की महिमा का गान किया है।[13] दक्षिणा के द्वारा भी व्यक्ति स्वर्ग लोक में उच्च स्थान पाते है।[14] इस धरती पर दक्षिणा देने वाले दाता कभी दुःख या क्लेश नहीं पाते, उन्हें सभी प्रकार के सुख प्राप्त होते है।[15] इस प्रकार पृथिवी पर सभी दुःखों की प्राप्ति तथा जीवन के पश्चात् परलोक में स्वर्ग की प्राप्ति का साधन दान को बताकर मनुष्य को दान देने के लिए प्रेरित किया है। '**स्वर्ग कामो यजेत्** [16] यह श्रुति वाक्य तो प्रसिद्ध ही है अर्थात् यज्ञ करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यज्ञ में तीन वस्तुएँ प्रमुख होती है– देवता, द्रव्य तथा त्याग। देवता जो कि हमें अनेक पदार्थ प्रदान करते है उनके लिए देना भी हमारा कर्त्तव्य है। आदान–प्रदान के रूप में ही वैदिक धर्म में चिन्तन हुआ है। यज्ञ दान और त्याग की भावना ही आधारित है। इस दान की महिमा बृहदारण्यक् उपनिषद् में और उजागर होती है जिसमें प्रजापित मनुष्य जाति को द अक्षर के द्वारा दान करने का उपदेश देते है। [17] भूलोक को मर्त्यलोक भी कहा गया है। इसलिए हर वस्तु और जीव विनाश की ओर अग्रसर हो रहा है। मनुष्य प्रत्येक पदार्थ को जीवनपयोगी समझ कर अपने अधीन करना चाहता है। अधिक संग्रह करना भविष्य के सुख का लक्ष्य बना लिया है। जिससे कि सामाजिक असंतुलन, ईर्ष्या, आर्थिक विषमता और धनाभिमान जैसी बुराईयाँ समाज में जन्म ले लेती है। इसीलिए वेद में त्याग और दान की भावना पर बल दिया गया है। यही इस सामाजिक बुराई की औषधी है। यजुर्वेद तथा ईशोपनिषद् का कथन है कि –

तेन त्यक्तेन भु०जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्। [18]

दान के सार्वभौमिक सिद्धान्त का ही संकेत है। ऋग्वेद में ऐसे गृहपति की कामना की गई है जो मानव का हित चाहने वाला, वीर एंव दानी हो। [19] दानी व्यक्ति की प्रशंसा एवं दान न करने वाले की निन्दा की गई है। दान

देने वाले व्यक्ति के विषय में कहा गया है कि उसका धन कभी विनष्ट नही होता परन्तु दान न करने वाले को किसी प्रकार का सुख नहीं मिलता। [20] वेद कभी भी संग्रह की बात नहीं करता। वह तो अपने संग्रह में से सदैव दुःखी और निर्धन को देने के लिए कहता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि जो व्यक्ति अन्नवान् होते हुए भी अन्न की इच्छा करने वाले दुःखी और निर्धन को अन्न नही देता, उसके सामने ही भोजन कर लेता है, उसे सुख नही मिल सकता। [21] इसके विपरीत अन्न की कामना करने वाले निर्धन याचक को जो अन्न देता है, वही वास्तव में भोजन करता है। ऐसे व्यक्ति के पास सदैव अन्न रहता है तथा समय पड़ने पर उसकी सहायता के लिए सभी लोग उपस्थित रहते है। [22] इसलिए मनुष्य को अपने दीर्घ जीवन का पथ देखते हुए याचना करने वाले को दान करके सुखी करना चाहिए। [23] वेद तो स्वंय भोजन करने से पहले दूसरे व्यक्ति को देने की बात कहता है। एक मन्त्र में यह भी कहा गया है कि जो व्यक्ति दूसरे को न दे कर केवल स्वयं भोजन करता है वह मात्र पाप का ही भक्षण करता है, अर्थात् वह पापी है। [24] अतः वेद में जो दान की महत्ता बताई गई है उससे स्पष्ट है कि दानी व्यक्ति द्वारा दान करने से निर्धन एंव दुःखी व्यक्ति का भी निर्वाह हो जाता है। इसमें समाज में आर्थिक रूप से समान स्तर पर लाने का प्रयास वेद में दर्शाया गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् में दान के विषय में यह भी कहा गया है कि पात्र–अपात्र का विवेक करके दान देना चाहिए। [25] धर्मशास्त्रों में पात्र–अपात्र पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। वाल्मीकि रामायण में भी कहा गया है कि धन–सम्पन्न व्यक्ति को दान नही देना चाहिए। [26] सामाजिक समानता लाने की बात यहाँ प्रदर्शित होती है क्योंकि जिसके पास पहले ही पर्याप्त मात्रा में धन है उसे और अधिक नहीं देना चाहिए, जिसको आवश्यकता है उसे ही दिया जाना चाहिए। सुपात्र, उचित स्थान और उचित समय में दिये जाने वाले तथा उपकार की भावना से दिए जाने वाले दान की ही महत्ता है। इस विषय में श्रीमद्भगवत् गीता में सात्विक, राजसिक तथा तामसिक इन तीनों प्रकार के दोनों का उल्लेख मिलता है।[27]

इस प्रकार भारतीय समाज में दान देना सामाजिक कर्त्तव्य भी है जिसे धर्मपूर्वक सम्पादन करना चाहिए। तैत्तिरीयोपनिषद् के वचन को हमेशा स्मरण रखना चाहिए, जिसमें कहा गया है कि **श्रद्धया देयं अश्रद्धयादेयं श्रिया देयम्। ह्रिया देयं भिया देयम्** [28] अर्थात् श्रद्धा से देना चाहिए, अश्रद्धा से नहीं देना चाहिए सामर्थ्यानुसार देना चाहिए तथा भय से देना चाहिए।

निष्कर्ष रूप में उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि वेद में सर्वत्र दानी की प्रशंसा करके दान की महत्ता को दर्शाया गया है, जो आज भी उतनी प्रासंगिक है। वर्तमान आर्थिक विषमता जिसे सभी बुराईयों की जड़ माना जाता है, को दूर करने के लिए एक उदात्त साधन है, जिसे वेद ने धर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया।

सदंर्भ सूची

1. तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यत्
   द्वापरे यज्ञामेवाहुर्दानमेकं कलौयुगे। मनु 1.86
2. 'देवो' दानाद्वा। दीपनाद्वा। द्योतनाद् वा.....। निरूक्त 7.4.2
3. ऋग्वेद 1.126.1–5
4. वही, 1.126.2
5. वही, 5.61.5–9
6. यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत्। तरन्त इवं मंहना। ऋग्वेद 5. 61.10
7. प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वानिजोऽदात्। ऋग्वेद 6. 47.22
8. दश स्थान् प्रष्टिमतः शतंगा अथर्वभ्यः। अश्वथः पायवेऽदात्। ऋग्वेद 6. 47.22
9. यथा चिच्चैद्यः कृशुः शतमुष्ट्रानां ददत् सहस्त्रा दश गोनाम्। ऋग्वेद 8. 5.37
10. मकिरेना पथा गाद् येनेमे यन्ति चेदयः।
    अन्यो नेत् सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जनः।। ऋग्वेद 8.5.39
11. वही, 8.6.46–48
12. वही, 1.125.6
13. वही, 10.107.1
14. वही, 10.107.2
15. वही, 10.107.8
16. तायं महाब्राह्मण 16.12.6, 16.15.5
17. बृहदारण्यक् उपनिषद् 5.2.2
18. यजुर्वेद 40.1 ईशावस्योपनिषद्।
19. ऋग्वेद 6.53.2
20. ऋग्वेद 10.177.1
21. य आघ्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान्सन् रफितायोपजग्मुषे।
    स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितारं न विन्दते।। ऋ.10. 117.2
22. इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय।
    अरभस्मै भवति यमाहूता उतापरीषु कृणुते सरवायम्।। ऋ.10.117.3
23. वही. 10.117.5
24. मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत सतस्य।
    नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाद्यो भवति केवलादी। ऋ. 10.117.6
25. तैत्तिरीयोपनिषद् 1.11
26. न दानमर्थोपचितेषु युज्यते। वा.रा. सुन्दर काण्ड 41.3
27. गीता 17.20–22
28. तैत्तिरीयोपनिषद् 1.11